भारतीय समाज पर धार्मिक एवं सामाजिक आंदोलनों का प्रभाव : सवाल, संघर्ष एवं परिवर्तन

डॉ. अर्चना कुमारी*

सारांश–इस धरा पर परिवर्तन की यात्रा में धार्मिक एवं सामाजिक आन्दोलनों का महत्वपूर्ण योगदान ही नहीं रहा, वरन् ये एक प्रमुख अभिकरण के रूप में उत्तरदायी भी रहे। मानव सभ्यता की यात्रा के बीच मूल्य एवं मान्यताओं के रूप में मानव के सामाजिक जीवन की स्थापना धार्मिक एवं सामाजिक आन्दोलनों से ही संभव हो पायी है। भारत ही नहीं, वरन् पूरी दुनियां में व्यवस्था परिवर्तन हेतु धार्मिक एवं सामाजिक आन्दोलनों के माध्यम से सर्वप्रथम शंखनाद किया। धार्मिक एवं सामाजिक आन्दोलनों के नायकों ने अपने पूरे जीवन को समाज हेतु समर्पित कर दिया। भारत में ऐसे ढेर सारी कलंकारी व्यवस्था रही है, जो मानवता के लिए एक काला धब्बा था। वास्तव में इन काले धब्बों को धार्मिक एवं सामाजिक आन्दोलनों के माध्यम से समाप्त करके भारतीय समाज को नई ऊचाईयों पर स्थापित करने का प्रयास इन आन्दोलनों से जुड़े नायकों का रहा है। इनके प्रयासों से ही भारतीय समाज की पहचान वैश्विक स्तर पर 'वसुधैव कुटुम्बकम्' के रूप में स्थापित रही है।

प्रमुख शब्दावली :–आन्दोलन, शंखनाद, मानवता, वसुधैव कुटुम्बकम्, धर्म, जाति, प्रजाति, पंथ, परम्परा, समरसता, प्रेम–बन्धुत्व, भाईचारा, अस्पृश्यता, छुआछूत, आर्य समाज, ब्रह्मसमाज।

परिचय एवं सैद्धान्तिक परिप्रेक्ष्य–भारतीय समाज धार्मिक एवं सामाजिक विविधता की वैचारिकी से पोषित रहा है। अर्थात् यहाँ विविध जाति, प्रजाति, धर्म, सम्प्रदाय, पंथ, परम्परा से जुड़े लोग रहे हैं, जो भारत को मानवतावादी देश के रूप में स्थापित करने में महत्वपूर्ण भूमिका अदा किये हैं। भारतीय जनमानस की यात्रा को हम देखें तो यह यात्रा धर्म, कर्म एवं कर्तव्य से पोषित रही है। भारतीय धर्मग्रन्थों में कहा गया है कि :

'धर्मो धारयति इति धर्माणा'

अर्थात् जो धारण किया जाय वही धर्म है। वास्तव में लोकजन धारण क्या करता है? लोकजन कर्तव्य को धारण करता है। लोकजन का देश के प्रति, समाज

***पूर्व शोध–छात्रा, समाजशास्त्र विभाग, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी**

के प्रति, माता–पिता एवं गुरूजनों के प्रति, असहायों एवं निर्बलों के प्रति किया जाने वाला कर्तव्य ही वास्तव में धर्म का सच्चा स्वरूप है। भारत अनादिकाल से ही इसी वैचारिकी के साथ गतिमान रहा है, लेकिन कालक्रम में कुछ स्वार्थपरक शक्तियों ने इस वैचारिकी को कमजोर करने एवं तोड़ने का कुत्सित प्रयास किया, जिसके कारण समाज में शोषण, अत्याचार, अन्याय एवं विविध स्तरों पर भेद की वैचारिकी के उदय को भी देखा जा सकता है। इस तरह की वैचारिकी ने भारतीय समाज को बड़े स्तर पर प्रभावित किया। जनसंख्या के एक बड़े भाग पर हाशिए पर किया। उनका जीवन ऐसे नारकीय बना दिया कि समाज में उनकी कोई प्रस्थिति ही नहीं रह गयी थी। इनमें महिलाओं की स्थिति अधिक दयनीय रही। यह स्थिति विविध कालखंडों में देखी जा सकती है। यहाँ के लोगों के साथ–साथ विविध विदेशी हुकूमतों ने भी हाशिए के समाज पर मानवता को तार–तार करने वाला जुल्म ढाया। हजारों वर्षों तक भारत विभिन्न हुकूमतों का गुलाम रहा।ये सभी परिस्थितियां कहीं न कहीं भारत की एकता एवं अखंडता की दीवारों को कमजोर ही नहीं किया, वरन् तोड़ने का प्रयास किया है। इस यात्रा में हम देखें तो भारत की मानवतावादी वैचारिकी की दीवारें दरकनी प्रारम्भ हुई एवं सामूहिक विचार विभिन्न खेमों में बँटते गये। ऐसी स्थिति में भी हाशिए का समाज हिन्दू धर्म का अंग बना रहा।

इन दरकती दीवारों को मजबूती प्रदान करने में हम धार्मिक आन्दोलनों की वैचारिकी को देखते हैं, जो भारत में समाज सुधार का पहला कदम था। लेकिन यह आन्दोलन धर्म की भित्ति की सहारा लेकर आगे बढ़ा। इस कड़ी के बाद हम सामाजिक आन्दोलनों की वैचारिकी को भी देखते हैं, जिसमें लोग समाज में व्याप्त समस्या एवं असमानता के समाधान के लिए आगे आये और तन, मन एवं धन के साथ इन विसंगतियों की समाप्ति के लिए सर्वप्रथम शंखनाद किया।

भारत में भक्ति आन्दोलन : सामाजिक क्रान्ति की यात्रा में पहला कदम–भारत में भक्ति आन्दोलन को सामाजिक क्रान्ति की यात्रा में पहले कदम के रूप में देखा जा सकता है। धार्मिक आन्दोलनों की वैचारिकी को 12वीं शताब्दी से देखा जा सकता है। मानव सभ्यता के पहले की यात्रा को हम देखें तो समस्त घटनाओं को परम्परा के ही चश्मे से देखा जाता था। इस अवस्था तक समस्त घटनाओं को लोग एक नियति के रूप में स्वीकार करते थे। कालक्रम में हम देखें तो मानव सभ्यता की विकासयात्रा में पहली बार धार्मिक नायकों ने धर्म की भित्ति की सहारा लेकर लोगों से सवाल खड़ा करना प्रारम्भ किया। इन आन्दोलनों के नायकों के रूप में हम प्रथम वैष्णव आचार्य स्वामी रामानन्द को देखते हैं। स्वामी रामानन्द ने पहली बार दलित, पिछड़ों एवं हाशिए के समाज के लोगों को अपनी

शिष्य परम्परा से जोड़कर सामाजिक परिवर्तन का पहला कदम रखा। इस यात्रा में आगे चलकर ढेर सारी आवाजें जुड़ती गयीं, जिसमें हम कबीर, रैदास, दादू, धन्ना, पीपा, सेन, सघना, त्रिलोचन आदि को देख सकते हैं। इन लोगों ने अपनी भक्ति एवं पदों के माध्यम से सामाजिक बदलाव के लिए एक सशक्त कदम को आगे बढ़ाया। इस बढ़ते कदम को हम सामाजिक क्रान्ति की यात्रा में पहला संयुक्त कदम मान सकते हैं। इन संतों ने मानवतावादी समाज की एक व्यवस्थित रूपरेखा को लोगों के सामने रखा। शोषण, अत्याचार एवं अन्याय को इस धरा का कलंक बताया। इस तरह भक्ति आंदोलन के माध्यम से समाज में सामाजिक समरसता, प्रेम, बन्धुत्व एवं समान भाईचारा के लिए एक मजबूत नींव पड़ी, जिसकी यात्रा आज उत्तर आधुनिकता के पायदान तक भी गतिमान है।

सामाजिक आन्दोलन : सामाजिक क्रान्ति की यात्रा का दूसरा पड़ाव–

वैश्विक पटल पर सामाजिक सुधार आंदोलनों की पहली कड़ी में भक्ति आंदोलन को देखा जा सकता है। समाज में व्याप्त असमानताओं के खिलाफ धर्म की भित्ति का सहारा लेकर पहली बार सवाल उठने प्रारम्भ हुए। इन सवालों को हम 12वीं शताब्दी की शुरूआत से देख सकते हैं। इसी यात्रा में हम सामाजिक आंदोलनों की वैचारिकी को भी देखते हैं। इस यात्रा को सामाजिक क्रान्ति की यात्रा का दूसरा पड़ाव भी कहा जा सकता है। इस पड़ाव में हम गाँधी, अम्बेडकर, रामाबाई, सावित्री बाई फूले, दयानन्द सरस्वती, स्वामी विवेकानन्द, राजाराम मोहन राय विनोबा भावे, जय प्रकाश नारायण, ज्योतिबा आदि को देख सकते हैं। सामाजिक आंदोलन के इन नायकों ने समाज को एक नई दिशा दी, जिससे हाशिए के समाज के लोगों की भागीदारी केन्द्र की तरफ उन्मुख हुई।

स्वतंत्र भारत में सामाजिक आंदोलन : सामाजिक क्रान्ति का तीसरा पड़ाव– स्वतंत्र भारत में हम देखें तो स्पष्ट दृष्टिगोचर होता है कि सामाजिक आन्दोलनों की यात्रा अभी रूकी नहीं है, बल्कि जारी है। हाँ, इसके स्वरूप थोड़े अलग जरूर हैं। इन यात्राओं में ऐसे ढेर सारे आंदोलनों को देखा जा सकता है, जो विविध सामाजिक मुद्दों को लेकर आगे बढ़े, जिसमें 1960–1970 के दशक के किसान आंदोलन, पर्यावरणीय आंदोलनों में चिपको आंदोलन 1973 आधारित आंदोलनों में दलित आंदोलन, पिछड़ा वर्ग आंदोलन, नक्सलवादी आंदोलन आदि को देखा जा सकता है।

धार्मिक–सामाजिक आंदोलनों का भारतीय समाज पर प्रभाव–भारतीय समाज में धार्मिक एवं सामाजिक आन्दोलनों का प्रभाव प्रत्येक क्षेत्रों पर पड़ा है, जिसके प्रभावस्वरूप भारतीय सामाजिक संरचना में आमूल–चूल परिवर्तन आया।

दलितों, पिछड़ों, महिलाओं एवं हाशिए के समाज के लोगों की भागीदारी होनी प्रारम्भ हुई। परम्परागत मूल्य एवं मान्यताएं काफी कमजोर पड़े। इन समस्त पक्षों को अधोलिखित बिन्दुओं पर स्पष्ट किया है :

सामाजिक–सांस्कृतिक परिवर्तन के लिए पहली बार उभरते कुछ सवाल–वैश्विक परिप्रेक्ष्य में हम देखें तो भारत की प्रारम्भिक संरचना काफी परम्परागत रही है। यह परम्परागत संरचना भारतीय समाज में हजारों–हजारों वर्षों तक विद्यमान रही है। मानव सभ्यता की विकास यात्रा में इन परम्परागत वैचारिकी में बदलाव आया है। इस बदलाव को हम 11वीं शताब्दी के बाद देख सकते हैं। अर्थात् इस 11वीं शताब्दी के बाद परम्परागत व्यवस्था के खिलाफ आवाजें उठनी प्रारम्भ हुई और यही से हम सामाजिक–सांस्कृतिक परिवर्तन के लिए कुछ उभरतें सवालों को भी देखते हैं। आज मानव सभ्यता जिस पायदान पर पहुँची है, उस यात्रा में सामाजिक–सांस्कृतिक परिवर्तन के लिए उठती आवाजें एवं उभरते सवालों के बीच ढेर सारे आन्दोलनों को देख सकते हैं। इन आन्दोलनों में भक्ति आन्दोलन को सामाजिक–सांस्कृतिक परिवर्तन के बीजारोपण के रूप में देखा जा सकता है। भक्ति एवं अन्य सामाजिक आन्दोलनों के माध्यम से तत्कालीन व्यवस्था में परिवर्तन हेतु पहली बार कुछ सवाल उभरे। उन सवालों की यात्रा आज वैश्विक पटल पर सामाजिक–सांस्कृतिक परिवर्तन के लिए जारी है।

अस्पृश्यता एवं छुआछूत की वैचारिकी पर कड़ा प्रहार–अस्पृश्यता एवं छुआछूत की वैचारिकी भारत ही नहीं वरन् दुनियां के अधिकांश देशों में देखी जा सकती है। वैसे मानव सभ्यता के इतिहास के प्रारम्भिक यात्रा में छुआछूत एवं अस्पृश्यता की वैचारिकी नहीं थी। जैसे–जैसे मानव सभ्यता के पायदान पर आगे बढ़ता गया, वैसे–वैसे वर्ण, जाति, प्रजाति आदि जैसे खेमें में बँटता गया। इन खेमों में बँटने के कारण मानव, मानवता के पथ से भटकता गया। परिणामस्वरूप समाज में छुआछूत एवं अस्पृश्यता की वैचारिकी का दंश इतना अधिक बढ़ा कि जनसंख्या का एक बड़ा भाग हाशिए की तरफ सरकता चला गया। यह हाशिए का समाज अस्पृश्यता एवं छुआछूत की वैचारिकी को एक नियति के रूप में देखने लगा, लेकिन समाज सदैव परिवर्तनशील रहा है। परिवर्तन की इस यात्रा में भक्ति आन्दोलन के माध्यम से सामाजिक नायकों द्वारा पहली बार अस्पृश्यता एवं छुआछूत की वैचारिकी को समाप्ति के लिए सवाल खड़े किये गये। हाँ, अन्तर इतना है कि ये सवाल धर्म की भित्ति का सहारा लेकर आगे बढ़े। भारतीय संत परम्परा के नायकों ने समाज की परम्परागत संरचना को तोड़ने का सार्थक प्रयास किया और इस तरह छुआछूत एवं अस्पृश्यता की वैचारिकी को समाप्त करने के

लिए सर्वप्रथम शंखनाद हुआ। कालान्तर में ये आवाजें एक कांरवाँ का रूप लेती गयी। इन आन्दोलनों के प्रभावस्वरूप समाज प्रकार्यात्मक परिवर्तन की तरफ गतिमान हुआ। आज उत्तर आधुनिकता के पायदान पर भी इन आवाजों की गूँज गतिमान है।

धार्मिक स्तर पर भेद वैचारिकी की अंत के लिए सार्थक पहल –भारतीय सामाजिक व्यवस्था धर्म की वैचारिकी से पोषित रही है। बहुतायत घटनाओं को एक लंबे समय से धर्म के चश्में से देखा जाता रहा है। लेकिन भारतीय सामाजिक व्यवस्था के अन्तर्गत धार्मिक स्तर पर भी भेद की वैचारिकी को देखा जा सकता है। धार्मिक कर्मकाण्डों की भागीदारी में कुछ ही लोगों की सहभागिता रही। मंदिरों, मठों, आश्रमों में दलितों का प्रवेश पूरी तरह से वर्जित था। इस धार्मिक वर्जना को तोड़ने के लिए भक्ति आन्दोलन को हम एक प्रमुख अभिकरण के रूप में देख सकते हैं। कालान्तर में इस वर्जना को तोड़ने के लिए ढेर सारे सामाजिक नायक जुड़ते गये। इन नायकों की कड़ी में हम स्वामी रामानन्द, कबीर, रैदास, दादू, धन्ना, पीपा, सेन, सघना, त्रिलोचन के साथ गाँधी, अम्बेडकर, बिनोवा भावे, जयप्रकाश नारायण, पेरियार, बाबू जगदेव आदि को देख सकते हैं, जिन्होंने धार्मिक स्तर पर भागीदारी के लिए क्रांति का वीणा आगे लेकर बढ़े। स्वामी रामानन्द ऐसे धर्मगुरु रहे, जिन्होंने इतिहास में पहली बार दलितों, पिछड़ों को अपना शिष्य बनाना प्रारम्भ किया। इस क्रांति की यात्रा में डॉ. भीमराव अम्बेडकर ने तो धर्म परिवर्तन की यात्रा तक पहुँच गये और अपने जीवन के अन्तिम समय में हिन्दू धर्म को त्यागकर बौद्ध धर्म को स्वीकार किया। इस तरह देखा जाय तो धार्मिक कृत्यों एवं मठों, मंदिरों, आश्रमों एवं धार्मिक स्थलों पर भागीदारी को लेकर धार्मिक एवं सामाजिक आन्दोलनों की महत्वपूर्ण भूमिका रही है। इन आन्दोलनों के परिणामस्वरूप धर्मगुरु के रूप में दलितों एवं पिछड़ों की भागीदारी को भी देखा जा सकता है।

लैंगिक भेद की वैचारिकी पर कड़ा प्रहार–धरती पर बच्चा जब जन्म लेता है, तो वह पूर्णतः जैविक अवस्था में होता है। समाज में आने के बाद समाजीकरण की प्रक्रिया के माध्यम से ही वह अपने को एक सामाजिक प्राणी के रूप में परिवर्तित होता है। वैसे यहीं से हम लैंगिक भेद की वैचारिकी को भी देखा जा सकता है। ईमाइल दुर्खीम अपनी पुस्तक 'दि डिवीजन ऑफ लेबर इन सोसाईटी' में कार्यों के बँटवारे की बात तो करता है, परन्तु लैंगिक भेद की बात नहीं करता, अर्थात् मानव सभ्यता का शुरूआती दौर लैंगिक भेद की वैचारिकी से पोषित नहीं था। कालक्रम में कुछ स्वार्थपरक शक्तियों ने लैंगिक भेद की वैचारिकी को जन्म दिया। इस बात की पुष्टि के संदर्भ में सिमोन द बुआ की पुस्तक 'द सेकेण्ड सेक्स'

में वर्णित तथ्य ''औरत पैदा नहीं होती, बल्कि समाज द्वारा उसे औरत बनाया जाता है'', को देखा जा सकता है। वहीं हम मार्क्स, मार्गन, आगस्ट कॉम्ट के सामाजिक परिवर्तन की यात्रा के संदर्भ में दिये गये विविध चरणों की बात करें तो वहाँ भी लैंगिक भेद की वैचारिकी दृष्टिगत नहीं होती है।

मानव सभ्यता की यात्रा जैसे–जैसे विकास के पायदान पर आगे बढ़ती गयी, वैसे–वैसे हम लैंगिक भेद की वैचारिकी को बड़े स्तर पर देखते हैं। कालान्तर में लैंगिक भेद की वैचारिकी की खाईयाँ इतनी गहरी हुई कि आज उत्तर आधुनिकता के पायदान पर भी उसे हम पूरी तरह समाप्त नहीं कर पाये हैं। इनमें विधवाओं की स्थिति और भी दयनीय रही। उन्हें पति की मृत्यु के बाद जबरन जिन्दा जला दिया जाता था। वास्तव में इस धरा का यह कृत्य सबसे बड़ा कलंक था। महिलाओं को समाज की मुख्यधारा में जोड़ने के लिए हम भक्ति आन्दोलन को देख सकते हैं, जिसमें पहली बार महिलाओं को शिष्य परम्परा से जोड़ा गया। वास्तव में यह इतिहास में सबसे क्रान्तिकारी कदम था। इसके बाद हम देखें तो गांधी, अम्बेडकर, फूले, सावित्री बाई, एनी बेसेण्ट आदि ने महिलाओं को समाज में बराबरी के अधिकार दिलाने हेतु सवाल खड़ा करना प्रारम्भ किया। इन लोगों के प्रयासों से बाल–विवाह पर प्रतिबन्ध लगे। कार्यक्षेत्र में महिलाओं की भागीदारी बढ़ी। साथ ही साथ विधवा महिलाओं के पुनर्विवाह का मार्ग प्रशस्त हुआ। ये सारे परिवर्तनों को हम धार्मिक–सामाजिक आन्दोलनों के प्रभावस्वरूप देख सकते हैं। वैसे स्वतंत्र भारत में संवैधानिक प्रावधानों के माध्यम से मानवीय समाज के बीच लैंगिक भेद की वैचारिक को समाप्त करने हेतु पूरी तरह से कानूनी जामा पहना दिया है। अतएव हम कह सकते हैं कि भारतीय समाज में लैंगिक आधारित भेद की वैचारिकी को तोड़ने का सर्वप्रथम शंखनाद धार्मिक एवं सामाजिक आन्दोलनों के रूप में देखा जा सकता है।

आर्थिक भागीदारी के लिए पहला कदम–इस धरा पर आर्थिक भागीदारी की खाईयां भी काफी गहरी रही हैं। जनसंख्या का एक बड़ा भाग आर्थिक उपादान से अलग–थलग रहा है। इस यात्रा में आज उत्तर आधुनिकता के पायदान तक भी सबकी आर्थिक भागीदारी पूरी तरह से सुनिश्चित नहीं हो पायी है। भारत में आर्थिक भागीदारी के लिए चलाये गये विविध आन्दोलन को देखा जा सकता है। इन आन्दोलनों को हम धार्मिक और सामाजिक आन्दोलनों के रूप में देख सकते हैं।

प्रेम, बन्धुत्व एवं मानवतावादी वैचारिकी की स्थापना हेतु सार्थक पहल–दुनियां की अधिकांश सभ्यताएं प्रेम, बन्धुत्व एवं मानवतावादी वैचारिकी से

पोषित रही हैं। लेकिन इन्हीं के बीच कुछ स्वार्थपरक शक्तियों के कारण मानव और मानव के बीच प्रेम, बन्धुत्व एवं मानववातादी की वैचारिकी कमजोर पड़ी। यहाँ तक कि मानव, मानव की परछाईयों से भी दूर रहा। वैयक्तिक स्वार्थों की पूर्ति के कारण अलगाववाद की वैचारिकी को जन्म दिया, जिसके कारण लोकजन के बीच काफी दूरियाँ बढ़ीं। लोग एक–दूसरे से दूर भागने लगे। यहाँ तक कि मानव परछाईयों के छू लेने मात्र से लोग अपने को अशुद्ध एवं अपवित्र मानने लगे। ऐसी स्थितियों में प्रेम, बन्धुत्व एवं मानवतावादी की वैचारिकी हाशिए की तरफ सरकती गयी। जनसंख्या का एक बड़ा भाग पूरी तरह से अलग–थलग पड़ गया। ऐसी स्थितियों में धार्मिक एवं सामाजिक आन्दोलनों के माध्यम से लोगों को केन्द्र में लाने का प्रयास किया गया। वहीं इन आन्दोलनों द्वारा लोकजन के बीच प्रेम, बन्धुत्व एवं मानवतावादी वैचारिकी के लिए सार्थक पहल की गयी। परिणामस्वरूप एक–दूसरे से अलग–थलग पड़े लोग एक–दूसरे के साथ जुड़ने लगे। यह एक क्रान्तिकारी परिवर्तन था। लोकजन के बीच बड़े स्तर पर दूरियाँ कम हुईं। इन आन्दोलनों की कड़ी में हम भक्ति आन्दोलनों के साथ–साथ ब्रह्म समाज, आर्य समाज को भी देख सकते हैं।

परम्परागत दृष्टिकोण में परिवर्तन–धार्मिक–सामाजिक आन्दोलनों के प्रभावस्वरूप लोकजन के बीच परम्परागत दृष्टिकोणों में परिवर्तन को देखा जा सकता है। इतिहास के आईने में हम देखें तो बहुतायत लोग परम्परा एवं धर्म के चश्में से अधिकांश घटनाओं को देखते थे। पूर्व निर्धारित मान्यताओं से अपने को अलग नहीं कर पाये थे। इस तरह की वैचारिकी के कारण भी जनसंख्या का एक बड़ा भाग उपेक्षा का रहा। भारत में विविध सामाजिक आन्दोलनों के माध्यम से हम परम्परागत दृष्टिकोण में परिवर्तन को देख सकते हैं, जिसमें बाल–विवाह पर प्रतिबन्ध, विधवा पुनर्विवाह की अनुमति के साथ–साथ अस्पृश्यता एवं महिलाओं के प्रति परम्परागत दृष्टिकोणों में परिवर्तन प्रमुख हैं।

कृषक जीवन पर प्रभाव–मानव सभ्यता की प्रारम्भिक अवस्था कृषि आधारित रही है। कहा भी जाता है कि कृषक जीवन मानव सभ्यता के जीवन संस्कृति का प्रारम्भिक अंग रहा है। भारत में कृषकों का जीवन भी अत्याचार एवं शोषण की वैचारिकी से पोषित रहा है। किसानों की स्थिति को सुदृढ़ बनाने के लिए स्वतंत्रता से पूर्व एवं स्वतंत्रता के बाद ढेर सारे किसान आन्दोलन चले, जिसमें हम तेलंगाना किसान आन्दोलन, तेभागा किसान आन्दोलन, नील किसान आन्दोलन, चम्पारण सत्याग्रह, पावना किसान आन्दोलन,, रंगपुर किसान विद्रोह, संन्यासी विद्रोह, उत्तर प्रदेश के कुछ किसान आन्दोलन महाराष्ट्र एवं तेलंगाना के किसान आन्दोलन आदि

को देखा जा सकता है। इन आन्दोलनों के प्रभावस्वरूप कृषक जीवन काफी हद तक शोषण एवं अत्याचार की वैचारिकी से जहाँ मुक्त हुआ है, वहीं फसलों के उचित मूल्य के लिए बाजार भी उपलब्ध हुआ है। किसान आन्दोलनों की यात्रा आज उत्तर आधुनिकता के पायदान पर भी जारी है।

पर्यावरणीय जीवन पर प्रभाव–भारत ही नहीं, दुनियां में देखा जाय तो जनजातीय समाज प्रकृति के काफी नजदीक जीवपन को गति देता रहा है। इसके दृष्टांत दुनियां के अधिकांश धार्मिक एवं पवित्र धर्मग्रन्थों में देखने को मिलते हैं, वहीं जनजातीय समाज पर अद्यतन मानवशास्त्रीय अध्ययन भी मानव सभ्यता के प्रकृति प्रेम को दर्शाते हैं, जिसमें हम पशु, पक्षी, पेड़ पौधे, पहाड़, झरने, तालाब आदि की पूजा को देख सकते हैं। रामायण, महाभारत में भी विभिन्न ऐसे दृष्टान्त दृष्टिगोचर होते हैं, जो प्रकृति पूजा पर आधारित थे। ये सभी दृष्टान्त मानव सभ्यता के प्रकृति प्रेम को दर्शाते हैं। इसी प्रेम की वैचारिकी के कारण प्रकृति को बचाने के लिए भी दुनियां में ढेर सारे आन्दोलन चले जिसमें हम विभिन्न धार्मिक एवं सामाजिक आन्दोलनों के रूप में स्वतंत्र भारत का चिपको आन्दोलन को देख सकते हैं। इस संदर्भ में हम इतिहास के आईन में देखें तो इस धरा पर ऋषियों, मुनियों एवं धार्मिक नेतृत्वकर्ताओं तथा मानवतावादियों ने भी प्रकृति एवं इससे जुड़े संसाधनों के संरक्षण पर विशेष बल दिया।

विविध स्तरों पर गतिशीलता–भारत ही नहीं, दुनियां में हम देखें तो विविध धार्मिक एवं सामाजिक आन्दोलनों के परिणामस्वरूप विविध स्तरों पर गतिशीलता बढ़ी। भारत में हम देखें तो विभिन्न आन्दोलनों के माध्यम से हम जाति सम्बन्धों में परिवर्तन एवं सहभागिता का लेकर बदलते दृष्टिकोण को देख सकते हैं। साथ ही साथ परम्परागत दृष्टिकोण, लैंगिक भेद एवं छुआछूत तथा अस्पृश्यता की वैचारिकी बड़े स्तर पर कमजोर पड़ी है। इन आन्दोलनों के प्रभावस्वरूप समान भागीदारी का दायरा भी बढ़ा है। इसके अलावा हम शिक्षा के क्षेत्र में भागीदारी को भी एक बड़े परिवर्तन के रूप में देख सकते हैं।

आज हम स्वतंत्र भारत में जीवन को गति दे रहे हैं, जहाँ उत्तर आधुनिकतावादी विचारधारा का बोलबाला है। वास्तव में यह यात्रा अपने आदिम अवस्था को पार करते हुए यहाँ पहुँची है। इस यात्रा के बीच ढेर सारे उतार–चढ़ाव आये। मानव की इस यात्रा को यहाँ तक पहुँचने में विविध कारक एवं अभिकरण यहाँ दृष्टिगोचर होते हैं। इन अभिकरणों में हम सामाजिक एवं धार्मिक आन्दोलनों को भी देख सकते हैं, क्योंकि दुनियां में बदलाव की यात्रा इन आन्दोलनों के माध्यम से ही बड़े स्तर पर देखी जा सकती है।

निष्कर्ष–वर्णित तथ्यों के आधार पर निष्कर्ष के रूप में कहा जा सकता है कि भारत ही नहीं, वरन् दुनियां में अधिकांश मानव सभ्यताएँ विविध स्वार्थपरक शक्तियों के कारण भेद की वैचारिकी से पोषित रही हैं, जिसके कारण जहाँ सामूहिकता की भावना कमजोर पड़ी, वहीं विचार विभिन्न खेमों में बँटते गये। परिणामस्वरूप इस धरा पर जनसंख्या का अधिकांश भाग जाति–प्रजाति, छुआछूत, अस्पृश्यता, धर्मगत एवं सम्प्रदायगत जैसी भेद की वैचारिकी से पोषित हुआ। इन बँटे विचारों को एक खेमे में लाने में हम भारत ही नहीं वरन् दुनियां में चले धार्मिक एवं सामाजिक आन्दोलनों को देख सकते हैं। इन आन्दोलनों के माध्यम से विविध स्तरों पर भेद की वैचारिकी जैसे छुआछूत, अस्पृश्यता, जाति भेद का दंश, धार्मिक असहभागिता के साथ–साथ लैंगिक भेद आदि जैसी वैचारिकी पर करारा प्रहार किया गया। परिणामस्वरूप इस तरह की वैचारिकी बड़े स्तर पर कमजोर पड़ी। आन्दोलनों की यात्रा में हम धार्मिक आन्दोलनों को परिवर्तन हेतु प्रथम पड़ाव के रूप में देखतें हैं, तो वहीं दूसरी तरफ सामाजिक आन्दोलनों को हम सामाजिक क्रांति का दूसरा पड़ाव मानते है। आन्दोलनों की यह यात्रा उत्तर आधुनिकता के पड़ाव पर भी आज विद्यमान है। जिसे हम स्वतंत्र भारत में सामाजिक आन्दोलन का नाम दे सकते हैं। यह स्वतंत्र भारत का यह आन्दोलन वास्तव में स्वतंत्र भारत का तीसरा पड़ाव है। अतएव अवधारणात्मक परिप्रेक्ष्य में कहा सकता है कि भारत में सामाजिक एवं धार्मिक आन्दोलनों के माध्यम से धार्मिक एवं सामाजिक नायकों ने भारतीय लोकजन को सही दिशा और दशा प्रदान किया। विविध स्तरों पर कुरूतियों पर प्रहार किया तो दूसरी तरफ भारत को 'वसुधैव कुटुम्बकम' की वैचारिकी के साथ लेकर आगे बढ़े। भक्ति आन्दोलन और उसके बाद सामाजिक आन्दोलन की यात्रा उत्तर आधुनिकता की यात्रा पर भी गतिमान है।

पठनीय एवं चुने गये ग्रन्थ

1. Durkheim, E. (1938). The Rules of Sociological Method. The Free Press. New York.
2. Durkheim, E. (1961). The Elementary Forms of the Religious Life. Kollier Books. New York.
3. Goode, W. J., & Hatt, P. K. (1952). Methods in Social Research. McGraw-Hill.
4. MacIver, R.M. and Page, Charles H.(1985). Society: An Introductory Analysis. Macmillin India Ltd. New Delhi.

5. Mukerjee, R. (1949).The Social Structure of Values. Macmillan and Co., London.
6. Nadel, S.F. (1969). The Theory of Social Culture. Cohen and West. London.
7. Prabhu, P.N.(1954). Hindu Social Organisation. Popular Book Depot. Bombay.